IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का मुद्दा और महिला आन्दोलन

सावन कुमार
शोध–छात्र,
मनोविज्ञान विभाग,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।
डॉ. सुबालाल पासवान
मनोविज्ञान विभाग
आर.पी.एस. महाविद्यालय, चकेयाज, वैशाली।
(बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर)

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का मुद्दा 1970 के दशक से महिला संगठनीकरण का केन्द्रबिन्दु रहा है। जैसे कि ऊपर चर्चा की गई है, शुरुआती अभियानों ने हिंसा को पाबन्दियों, भेदभाव, नियंत्रण और औरतों पर खुले में होने वाली हिंसा को परिवार के अन्दर असमान जेंडर सम्बन्धों और औरतों को परिवार, समुदाय और देश की इज्जत के रूप में देखे जाने के रूप में परिभाषित किया। महिलाओं पर हिंसा और शादी तथा परिवार (जन्म लेने वाले और वैवाहिक, दोनों) में औरतों की शक्तिहीन स्थिति के जुड़ाव को उजागर करते हुए, महिला संगठनों ने घर और परिवार के निजी दायरे में होने वाली महिला हिंसा को मान्यता के साथ–साथ पारिवारिक सम्पत्ति, घर और बच्चों पर अधिकारों को कानूनी मान्यता दिए जाने की माँग की।

लेकिन इस दौरान महिला संगठनों की माँगों का केन्द्रबिन्दु ज्यादातर सामाजिक और कानूनी रूप से स्वीकार्य विषमनियामक विवाह और परिवारों के अन्दर ही था, जो कि दूसरी पत्नी या परम्परागत प्रथाओं के अन्तर्गत किए गए वैवाहिक रिश्तों में रहने वाली औरतों जिन्हें कानूनी मान्यता प्राप्त नहीं थी, यौनकर्मियों और हमजिंसी औरतों को बाहर रखता था। 1983 में भारतीय दंड संहिता में पहले संशोधन के अन्तर्गत शामिल की गई धारा 498 ए ने परिवार के अन्दर होने वाली महिला हिंसा को मान्यता दी, जिसमें केवल विषमनियामक शादी के रिश्ते में रहने वाली औरतों को शामिल किया गया, यानी कि सिर्फ वे औरतें जिन्हें अपन पति या पति के किसी रिश्तेदार के हाथों क्रूरता का सामना करना पड़ता है।[1]

बलात्कार एक अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था जहाँ महिला संगठनों ने पीड़ित महिला के प्रति शर्म की सामाजिक धारणा के कारण इस मुद्दे पर बनी हुई चुप्पी को तोड़ने के लिए प्रभावकारी कदम उठाए। अदालती मुकदमों, पुलिस की छानबीन और पीड़ित महिला के प्रति समाज के रबैये के अनुभवों के माध्यम से, उन्होंने प्रक्रियात्मक और सबूत के कानूनों में बलात्कार की परिभाषा और बलात्कार में 'सहमति' पर बदलाव की माँग की। हालाँकि यह महत्त्वपूर्ण था, लेकिन यह विश्लेषण और इस प्रकार सरकार से महिला हिंसा से निपटने के लिए कानूनों की माँग करना महिलाओं के व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित था। इसमें ऐसी महिलाओं के अनुभव शामिल नहीं थे जिन्होंने यौन हिंसा का सामना किया लेकिन अपराधी को इसलिए दंड नहीं मिला, क्योंकि वह महिला एक विशष जाति या समुदाय से थी, जिसे सामाजिक और सरकारी समझ के अन्तर्गत,

सामाजिक रूप से दरकिनार और कलंकित किया जाता है।

अतः औरतों पर जाति आधारित हिंसा, अस्वीकार्य यौन प्रवृत्ति के कारण होने वाली हिंसा, साम्प्रदायिक द्वेष के कारण होने वाली हिंसा जहाँ औरतों को 'दूसरे' समुदाय की होने के कारण निशाना बनाया जाता है, या विवाह और परिवार के नियामक ढाँचों में फिट न होने वाली औरतों पर होने वाली हिंसा, यौनकर्मी औरतें या विकलांगता के कारण औरतों पर होने वाली हिंसा–ये सब मुद्दे इस दौरान की नारीवादी राजनीति में अपने लिए जगह नहीं बना पाए।

दलित महिला कार्यकर्ताओं ने याद दिलाया कि महिला आन्दोलनों का विवाह और परिवार के अन्दर होने वाली व्यापक हिंसा में दलित औरतों की वास्तविकता शामिल नहीं है, जिन्हें परिवार और विवाह के अन्तर्गत होने वाली हिंसा के अतिरिक्त, ढाँचागत सामाजिक हिंसा का भी सामना करना पड़ता है। हिंसा के उनके अनुभवों और जाति आधारित सत्ता, असमानता तथा बहिष्कार को दंड–मुक्ति देने वाले समाज में, एक जाति विशिष्ट की होने के कारण, उन पर चुप्पी थोप दी जाती है। दलित औरतों पर जाति और जेंडर के आधार पर होने वाली हिंसा के मुद्दे को सम्बोधित करने के लिए जाति और पितृसत्ता की बारीक परतों की समझ तथा उनके दमन और हिंसा की एक अलग अवधारणा बनाने की आवश्यकता थी। पितृसत्ता के विश्लेषण और महिला हिंसा की समझ में जाति का पहलू शामिल नहीं था–यह महत्त्वपूर्ण बिन्दु दलित महिलाओं ने 1990 के दशक में उठाया।[2]

इसे और स्पष्ट रूप से समझा जाए तो, दलित पुरुषों और दलित समुदाय का अपमान करने के लिए औरतों के खिलाफ हिंसा का उपयोग किए जाने का मतलब है कि यह हिंसा सामूहिक और सार्वजनिक है, जहाँ सरकार और समाज इसके गवाह हैं। दलित औरतों को निर्वस्त्र करके घुमाये जाने के रूप में की जाने वाली यौनिक हिंसा/या उच्च जाति के पुरुषों द्वारा उनका बलात्कार, यह सभी दलित औरतों पर अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास है। जाति समाज में, जाति और जेंडर आधारित हिंसा में 'पुरुषत्व' की धारणा केन्द्रीय भूमिका रखती है, जहाँ पुरुषत्व को पुरुषों के औरतों पर नियंत्रण के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसी तर्क से, 'दूसरे' समुदाय की औरतों पर नियंत्रण स्थापित करना उस समुदाय के पुरुषत्व को कम करने का तरीका बन जाता है।

ऐसी हिंसा क अनगिनत मामले हैं, कुछ का दस्तावेजीकरण हुआ है, लेकिन ज्यादातर को नजरअन्दाज कर दिया गया। दलित औरतें खुद भी ऐसी हिंसा को रिपोर्ट नहीं करतीं, क्योंकि उन्हें प्रतिहिंसा का डर रहता है, और इसके अलावा, प्रशासनिक, पुलिस और कानूनी–तंत्र भी इसके लिए कोई समाधान नहीं देता–इन महकमों के उच्च पदों पर अक्सर उच्च जाति के लोग ही कार्यरत हैं और वे अपराधियों के साथ मिलीभगत करके, इस प्रकार की हिंसा को अदृश्य बनाए रखते हैं।[3]

ऐसी औरतों के सन्दर्भ में होने वाली हिंसा को देखना भी जरूरी था, जो स्वीकार्य विषमनियामक विवाह और परिवार के दायरे में फिट नहीं होतीं, जैसे कि यौनकर्मी और हमजिंसी महिलाएँ। हालाँकि महिला आन्दोलनों के अन्तर्गत यौनकर्म को आम तौर पर हिंसा ही माना जाता रहा, यौनकर्म करने वाली औरतों के साथ, उन पर होने वाली हिंसा की समझ बनाने के उद्देश्य से, सम्पर्क बनाने के कोई प्रयास नहीं किए गए। ऐतिहासिक रूप से, क्रानून और समाज दोनों ने यौनकर्म करने वाली औरतों को मुख्यधारा समाज से दूर रखा है, जिससे कि समाज पर उनकी 'अशुद्ध' यौनिकता का अनैतिक प्रभाव न पड़े, और इसके कारण उनके खिलाफ होने वाली हिंसा बेरोक–टोक चलती रही।

अनैतिक व्यापार रोकथाम अधिनियम, 1986 और भागयतीय दंड संहिता की धाराएँ 370, 370 ए 373 व्यक्तियों के व्यापार को रोकने के लिए बनाई गई हैं, जिनमें बच्चों का व्यापार और उनका शारीरिक और सामाजिक शोषण भी शामिल है, लेकिन ऐतिहासिक रूप से इन्हें यौनकर्म करने वाली औरतों के खिलाफ ही उपयोग किया जाता रहा है। यह वास्तव में यौनकर्मी औरतों का अपराधीकरण करता है। भारतीय दंड संहिता के अन्य प्रावधानों के साथ पढ़े जाने पर, इस अधिनियम जिसका लक्ष्य है 'अभद्र व्यवहार' और 'सार्वजनिक उपद्रव' को नियंत्रित करना और अभद्रता करने के लिए लोगों को हिरासत में लेना, वास्तव में यह सभी औरतों, और विशेषकर यौनकर्म करने वाली औरतों के सन्दर्भ में पुलिस की शक्ति को बढ़ावा देने का काम करता है। पुलिस यौनकर्मियों को 'बुरा' और 'उपलब्ध' मानने वाली सामाजिक धारणाओं से प्रभावित होती है, और सरकार द्वारा बनाए गए कानून पुलिस द्वारा यौनकर्म करने वाली औरतों का शोषण और हिंसा करने को वैधता देते हैं।[4]

इसलिए, यौनकर्मियों के अभियानों में यौनकर्म का गैर–अपराधीकरण. उनकी केन्द्रीय माँग रही है। हालाँकि यहाँ भी, अलग–अलग समूह अलग–अलग मुद्दों पर जोर देते हैं–कुछ यौनकर्म को कानूनी मान्यता देने की माँग करते हैं, और कुछ गैर–अपराधीकरण की, और कुछ यौनकर्म के उन्मूलन और यौनकर्मियों के पुनर्वास की। इस सबके बावजूद, इन विमर्श और तनावों और यौनकर्मियां के संगठनीकरण ने उनके मानव अधिकारों पर ध्यान आकर्षित किया है, जहाँ वे नागरिक, श्रमिक और औरतों के रूप में सुरक्षा और अधिकारों की माँगकर रही हैं, परिवार और पितृसत्ता की विचारधारा पर सवाल उठा रही हैं जो उनके खिलाफ शोषण और हिंसा को बढ़ावा देते हैं, यौनिक नैतिकता के मुद्दे और यौनकर्मियों के दमन के जेंडर दमन के साथ जुड़ावों को उजागर कर रही हैं। उनका तर्क रहा है कि यदि नैतिकता और कलंक को हटा दिया जाए, तो यौनकर्म को 'सामाजिक रूप से उत्पादक' काम के दायरे में वैध जगह मिल सकती है–जैसे कि दखभाल और घरेलू काम को और सम्भव है कि इससे यौनकर्म करने वाली औरतों पर होने वाली हिंसा भी कम हो जाए।[5]

1990 के दशक के बाद से, यौनकर्मियों के संघर्ष यौनिक अल्पसंख्यकों के संघर्षों से मेल खाने लगे। दोनों की विषमनियामक संस्थाओं और विचारधाराओं के सन्दर्भ में राजनीति एक सामान थी। दोनों को 'सामान्य', 'प्राकृतिक' और 'विकृत' यौनिकता की प्रचलित धारणाओं और कठोर जेंडर और यौनिक पहचानें थोपे जाने के कारण बहिष्कार और अत्यधिक हिंसा का सामना करना पड़ा है। यौनिक अल्पसंख्यक भी सरकार और समाज के हाथों कानूनी तथा नैतिक अपराधीकरण और 'विकृत व्यवहार' के खिलाफ अत्याचारी नैतिक चौकीदारी का शिकार बनते हैं, जो कि सामाजिक और कानूनी सज्ञाओं तथा हिंसा, यहाँ तक कि उनकी मौत का भी कारण बन जाती है।

जैसे कि ऊपर चर्चा की गई है, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर 'सामान्य' शरीर पर ही जोर दिया जाता है और कुछ प्रकार के यौनिक व्यवहारों को ही वैधता दी जाती है। हमजिंसी औरतों को परिवार और समाज तथा सरकारी अधिकारियों, जैसे कि पुलिस के हाथों काफी हिंसा का सामना करना पड़ता है, यहाँ तक कि यौनिक हिंसा का भी, क्योंकि उन्हें 'अप्राकृतिक' और 'विकृत' माना जाता है। हमजिंसी औरतों के इन मुद्दों को नारीवादी राजनीति में जंगह मिलने में बहुत समय लगा, क्योंकि विषमलैंगिक सम्बन्धों के नियामक ढांचे के बाहर 'यौनिकता' के मुद्दों को सम्बोधित करने पर उनके बीच झिझक थी। इसके अलावा, वे यौनिकता से जुड़े मुदुदों के मुकाबले आर्थिक व अन्य जीविका के मुद्दों को प्राथमिकता देते थे। महिला समूह इन मुददों को छूने से झिझकते रहे क्योंकि उन्हें डर था कि उन्हें 'पश्चिमी' या 'अनैतिक' माना जाने लगेगा।[6]

इसके अतिरिक्त, जेंडर आधारित हिंसा पर नारीवादी काम के दायरे से जो समूह इस शताब्दी की शुरुआत तक बाहर रहा, वह था विकलांगता के साथ जी रही महिलाएँ। इन औरतों पर नियमित रूप से होने वाली शारीरिक, मानसिक और यौनिक हिंसा, उनके कलंकित करार कर

दिए गए जीवन के कारण उनके साथ किया जाने वाला भेदभाव समाज और आन्दोलनों की धारणाओं में अदृश्य बना रहा। 1990 के दशक में उभरने वाले विकलांगता अधिकार आन्दोलन ने 'व्यक्तिगत क्षति या त्रासदी' पर दिए जाने वाले जोर को बदलकर विकलांगता को एक सामाजिक और राजनीतिक समस्या का रूप दिया। लकिन फिर भी, विकलांग लोगों के लिए सामाजिक बाधाओं के इस विश्लेषण में विकलांगता का जेंडर–सम्बन्धित पहलू शामिल नहीं था।

कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि विकलांगता के साथ जी रही औरतों के साथ परिवार और समुदायों, जो कि कोई अन्य वैकल्पिक या सरकारी सहयोग की व्यवस्था न होने के कारण मूल रूप से उन पर निर्भर हैं, में होने वाली हिंसा पर कम काम हुआ है। जो थोड़े–बहुत संस्थागत सहयोग की व्यवस्थाएँ हैं भी, जैसे कि मानसिक स्वास्थ्य केन्द्र, संरक्षण गृह, आँवासीय आश्रय, और बेसहारा लोगों के लिए आवास, विशेष जरूरतों वाले बच्चों के लिए किशोर गृह और धार्मिक आश्रय, वहाँ भी इन औरतों का शोषण और उनके साथ हिंसा होती है।

जहाँ एक ओर विकलांगता के साथ जी रही औरतें और लड़कियाँ अक्सर शारीरिक और यौनिक दोनों हिंसा की शिकार होती हैं, यह हिंसा ज्यादातर अदृश्य रही है क्योंकि ये मामले रिपोर्ट नहीं किए जाते। उनके सामाजिक अलगाव और परिवार पर उनकी निर्भरता के परिणामस्वरूप उनकी संवेदनशीलता और उसके कारण परिवार के सदस्यों द्वारा की जाने वाली यौनिक हिंसा पर चुप्पी बनी रहती है। इसलिए जेंडर और विकलांगता के आधार पर अलग कोई आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं, जिनकी मदद से विकलांगता के साथ जी रही औरतों/लड़कियों के साथ परिवार और संस्थागत आश्रयों में होने वाली यौनिक और जेंडर आधारित हिंसा के अपराधों का विश्लेषण किया जा सके।[7]

बलात्कार कानून में बदलावों के लिए महिला आन्दोलनों के अभियानों या सरकार के साथ विमर्श में विकलांगता के साथ जी रही औरतों/लड़कियों के साथ परिवार में उनकी देखरेख करने वालों और आश्रयों के कर्मचारियों और अनजान लोगों द्वारा की जाने वाली यौनिक हिंसा पर कोई दृष्टिकोण शामिल नहीं था। मानसिक रोगों से ग्रस्त औरतों की स्वच्छता बनाए रखने के नाम पर उनके गर्भाशय निकाले जाने के मामलोंने विकलांगता के साथ जी रही पर होने वाली यौन हिंसा को और भी जटिल तरीके से सामने लाकर रख दिया। हालाँकि जबरन नसबन्दी एक मुद्दा बन के उभरा जिस पर महिला आन्दोलनों के विभिन्न तबकों ने स्वायत्तता, गरिमा, नैतिकता और निजता की नारीवादी अवधारणाओं के आधार पर सम्बोधित किया।

लेकिन मानसिक स्वास्थ्य, मनो–सामाजिक समस्याओं से ग्रस्त औरतों के जीवन पर घरेलू और सार्वजनिक स्तर पर होने वाली हिंसा के प्रभाव, मानसिक बीमारी से जुड़े कलंक, बौद्धिक विकलांगता के साथ जी रही औरतों की देखभाल, उन पर शोध और अध्ययन और विमर्श की कमी से जुड़े अन्य मुद्दे नारीवादी संस्थाओं के ध्यान को आकर्षित नहीं कर पाए। विकलांगता अपने आप में एक विविधतापूर्ण श्रेणी है जिसमें प्रत्येक प्रकार की विकलांगता को अलग–अलग तरह से सम्बोधित करना होता है। चूँकि समाज और राज्य प्रणालियों में इन मुद्दों को सम्बोधित करने का सब्र नहीं है, इसलिए विकलांगता के साथ जी रही औरतों के मुद्दे अभी भी हाशिये पर ही हैं।

मुसलमान औरतों के साथ होने वाली हिंसा को साम्प्रदायिक राजनीतिक सन्दर्भ में समझना होगा, जिस पर धार्मिक पहचान की राजनीति हावी है, जिसके कारण मुसलमान औरतों की अपने समुदाय के अन्दर और बाहरी राजनीतिक तथा साम्प्रदायिक ताकतों के हाथों नियंत्रण और दबाव का शिकार होना पड़ा है। 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद भड़की साम्प्रदायिक हिंसा ने स्थिति को और अधिक गम्भीर बना दिया जहाँ पहचान का सवाल बाकी सभी सवालों पर हावी हो गया और उसन् मुसलमान औरतों की असुरक्षा की भावना को और भी बढ़ा दिया। एक ओर उन्हें दूसरे समुदाय के लोगों द्वारा की जा रही यौन हिंसा व अन्य हिंसा का सामना करना पड़ रहा था और दूसरी ओर, उन्हें अपने ही समुदाय के धार्मिक रूढ़िवादी और सामुदायिक नेताओं

के नियंत्रण का सामना करना था।

साम्प्रदायिक हिंसा के डर ने औरतों पर धार्मिक सामुदायिक पुरुष नेता और आम पुरुषों के नियंत्रण को बढ़ावा दिया और उनके लिए समुदाय के अन्दर पितृसत्ता के मुद्दे उठाना मुश्किल हो गया। 1990 के दशक के बाद, साम्प्रदायिक स्थिति और हिन्दू– मुसलमान समुदायों के ध्रुवीकरण के सन्दर्भ में, मुसलमान औरतों के अधिकारों के लिए समूह और नेटवर्क बहाल हुए। वर्ष 2002 के गुजरात नरसंहार ने मुसलमानों के साथ क्रूरता का उदाहरण पेश किया, जिसमें खासकर औरतों को निशाना बनाया गया। इस हिंसा के स्वरूप ने दर्शाया कि औरतों को पहले तो अन्य समुदाय की होने के कारण और फिर उस समुदाय की जैविक और सांस्कृतिक प्रजननशीलता के कारण निशाना बनाया गया। और उनके शरीरों को उनके समुदाय का प्रतीक बनाकर उन पर हिंसा की गई। गुजरात हिंसा ने मौजूदा कानूनी समाधानों कीं सीमितता को भी उजागर किया, क्योंकि इस मामले में बलात्कार एकमात्र तरीका नहीं था जिससे औरतों पर हिंसा की गई और ये घटनाएँ आकस्मिक, आवेगी और छिटपुट प्रकार की नहीं थीं।[8]

निष्कर्ष

महिला संगठनों ने अपने अभियानों में साम्प्रदायिक हिंसा/राजनीति का औरतों, खासकर अल्पसंख्यक समुदायों की औरतों के अधिकारों और जीवन पर होने वाले नकारात्मक प्रभावों को केन्द्रबिन्दु बनाया। लेकिन दुर्भाग्यवश, पहचान की राजनीति के उदय के परिणामस्वरूप महिला आन्दोलन में समुदाय के स्तर पर टकराव पैदा हो गए और महिलाओं के मुद्दों को संवैधानिक ढाँचे के अन्तर्गत उठाना मुश्किल हो गया। अल्पसंख्यक समुदायों की औरतों को अपने अधिकारों, सामुदायिक नियंत्रण और सत्तारूढ़ पार्टियों के जेंडर न्याय के मुद्दों पर दृष्टिकोण के विषयों पर खुद अंपने को संगठित करने पर मजबूर होना पड़ा।

सन्दर्भ सूचीः

1. रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021.
2. उपरोक्त.
3. दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा, ''समकालीन भारत में महिला आन्दोलन'', साधना आर्य एवं अन्य (संपादित), नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2016, पृ.276–281.
4. उपरोक्त.
5. साधना आर्य ''भारत में नारीवादी आन्दोलन'', संकलित (सं.) साधना आर्य एवं लता सिंह, भारत में महिला आन्दोलन : विमर्श और चुनौतियाँ, राधाकृष्ण, पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2023, पृ. 317.
6. राधाकुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800–1990, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011.
7. दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा (2016), पूर्वोक्त.
8. ज्ञानेन्द्र रावत (सम्पादक), औरत : अस्मिता और यथार्थ, कान्ती बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2019.
9. उपरोक्त.